NEHRU
BAL PUSTAKALAYA

वन्य जीवन

जित राय

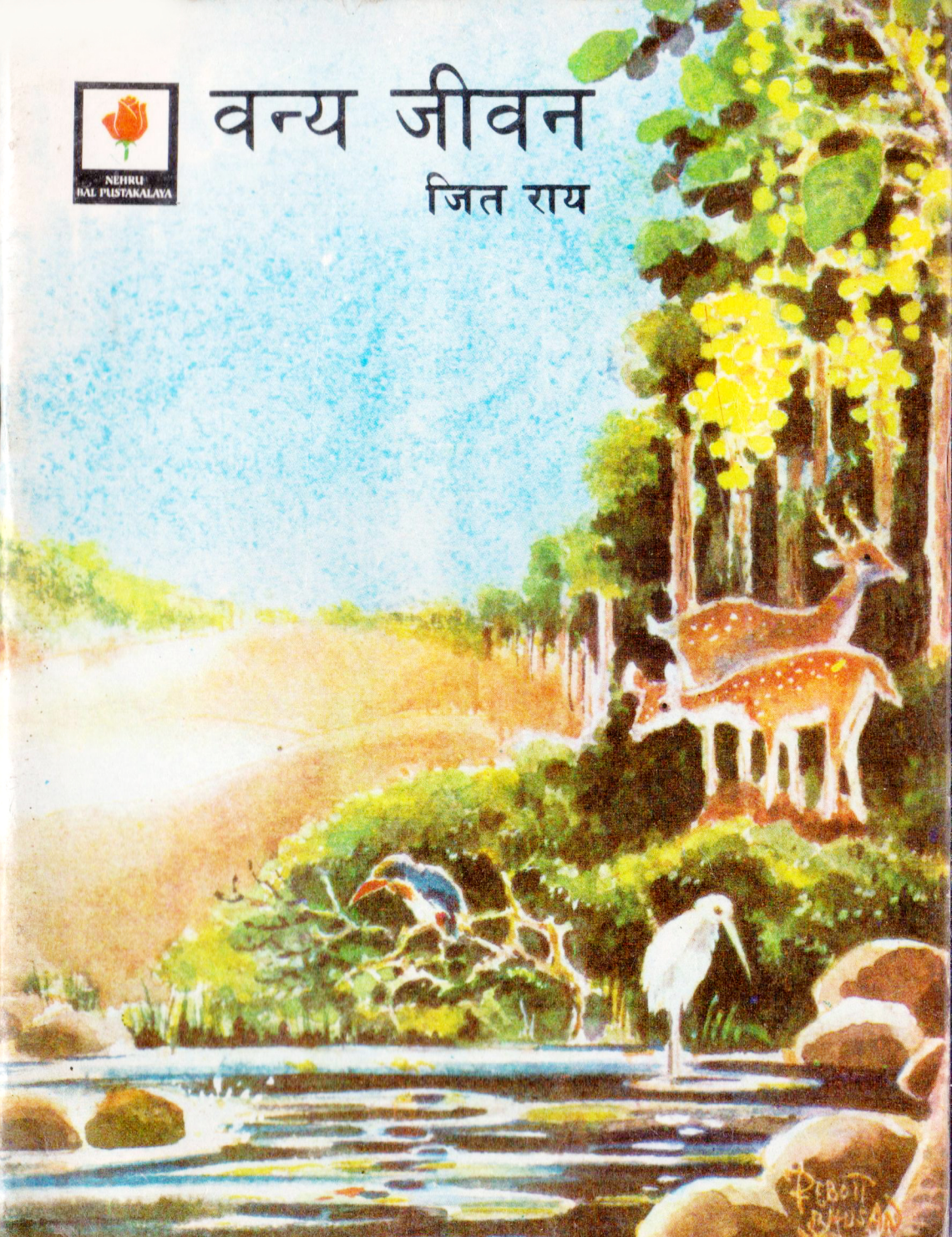

नेहरू बाल पुस्तकालय

वन्य जीवन

(पेड़-पौधे और पशु-पक्षी)

जित राय

अनुवादक

द्रोणवीर कोहली

चित्रकार

रिबोती भूषण घोष

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2003-3

पहला संस्करण : 1983

तेरहवीं आवृत्ति : 2006 *(शक 1927)*

मूल © जित राय, 1982

हिंदी अनुवाद © नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1983

Wild Woodnotes *(Hindi)*

रु. 14.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित

वन्य प्रदेशों का आकर्षण

हम सबको घर से कहीं दूर जाकर पिकनिक करना या सैर-सपाटे के लिए जाना क्यों अच्छा लगता है? कारण स्पष्ट है—जब कोई हमें बाहर भोजन के लिए न्यौता देता है, तो अच्छा लगता है न! उसी प्रकार जब हम बाहर कहीं पिकनिक करने या छुट्टी मनाने जाते हैं या कभी-कभार जब किसी मित्र के घर अथवा किसी होटल-रेस्तरां में खाने-पीने जाएं तो आहार-विहार में परिवर्तन, स्वाद और ज़ायके में थोड़े अंतर से, भोजन में रस आ जाता है। हालांकि अपने घर जैसी कोई जगह नहीं, फिर भी कभी-कभी थोड़े परिवर्तन के लिए घर से दूर जाने का मौका मिलता है तो मन को अच्छा लगता है।

इस पुस्तक के अधिकतर पाठक ऐसे होंगे जो शहरों में रहते हैं। स्वाभाविक है कि वे कुछ समय के लिए शहर की भीड़-भाड़, रेल-पेल कोलाहल और गाड़ियों के धएं से निकल भागना चाहते हैं। सड़कों पर चलते लोगों की धक्कामुक्की, मोटरकारों के कसैले-कड़वे धुएं और लगातार पों-पों करते भोंपुओं के शोर से हटकर जब हम देहात में जाते हैं तो वहाँ का शांत-नीरव वातावरण, शुद्ध वायु, खुले मैदान, आँखों को शीतलता देने वाली हरियाली हमारे भीतर एक नई स्फूर्ति भर देती है।

यही नहीं, देहात में जाओ, तो प्रकृति को निकट से देखने का भी अद्भुत अवसर मिलता है। गाँवों में जितनी बड़ी संख्या में पेड़-पौधे, पशु-पक्षी

कीड़-मकोड़े होते हैं उतने आम तौर पर शहर में, घर के भीतर या उसके आसपास दिखाई नहीं पड़ते। गाँवों में बरगद के विशाल पेड़ों, सरसराते बाँस के झुरमुटों और नारंगी बैंजनी फूलों से लदी लताओं व झाड़ियों की शोभा तो बस देखते ही बनती है। वसंत ऋतु में पेड़ों पर चटकीले लाल-नारंगी फूलों की चमक-दमक देखने के काबिल होती है और ग्रीष्म ऋतु में जब आम के पेड़ों पर बौर आता है और बाग-बगीचे रसीले आमों से लद जाते हैं तो उनकी भीनी-भीनी महक से सारा वातावरण सुरभित हो उठता है।

झाड़ियों में यहाँ-वहाँ खरगोश फुदकते हुए दिखाई पड़ेंगे। कहीं गिलहरियाँ एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर दौड़ लगाती या एक दूसरे का पीछा करती दिखाई पड़ती हैं। बंदर खीं-खीं करते उछल-कूद मचाते हैं। उनके नन्हें-नन्हें बच्चे आपस में छीना-झपटी करते हुए चीखने-चिल्लाने लगते हैं। कोई बंदरिया अपने नन्हें-से बच्चे को छाती से चिपकाए जा रही है। जरा बच्चे की पतली, कोमल बाँहें तो देखो! किस तरह से माँ से चिपटा है और नन्हें-नन्हें हाथों से उसने माँ की पीठ के बालों को कसकर पकड़ रखा है।

फाख्ता मटक-मटक कर उड़कर जमीन पर चोंच मार रही हैं। पर हमारी आहट पाते ही वे पंख फड़फड़ाते हुए उड़कर निकट के पेड़ पर जा बैठती हैं और कुऊ-कुऊ की बोली से कानों में रस घोलने लगती हैं। जंगली फूलों से लदी झाड़ियों पर रंग-बिरंगी तितलियाँ मंडरा रही हैं। नदी के निर्मल जल में तैरती छोटी-छोटी मछलियों की परछाइयाँ नदी के तल पर बिछे पत्थरों और रेत पर फिसल-फिसल जाती हैं।

रंग-बिरंगी, पारदर्शी पंखों वाले चिउरा (ड्रैगनफ्लाइ) झील के किनारे खड़े नरकुलों पर मंडरा रहे हैं। उथले पानी में सारस खड़े हैं। खंजन पक्षी रेत पर दौड़ रहे हैं। दलदली किनारों पर स्निपेट लंबी, रबड़ जैसी चोंच मार रहे हैं। एकाएक रंगों की चौंध-सी पड़ती है। अरे, यह तो रामचिरैया थी जो बिजली की तेजी से आई और पानी की तरह सतह के बहुत निकट फिसलती किसी मछली की चोंच में भरकर अदृश्य हो गई।

सचमुच, ये स्थान अब भी प्राकृतिक अवस्था में हैं। मनुष्य के स्पर्श से ये दूषित नहीं हुए। फिर, यहाँ दूसरी चीजें भी हैं, जिन्हें देख-देखकर दिल बाग़-बाग़ हो जाता है।

इन सब जगहों से हम इतना लगाव क्यों महसूस करते हैं? इसका एक खास कारण और भी है। ये वही स्थान हैं जहाँ मनुष्य ने अपना आदि जीवन आरंभ किया। प्राचीन काल में मनुष्य ने (अर्थात हमारे और तुम्हारे पूर्वजों ने)हजारों वर्षों तक इन्हीं वन्य प्रदेशों में, यहाँ की गुफाओं या पेड़ों पर जीवन बिताया। इसीलिए तो आज भी (और यह न जानते हुए भी कि ऐसा क्यों है) हमें इन वन्य प्रदेशों से बड़ा मोह है। जब कभी हम भूले-भटके भी किसी वन्य प्रदेश में लौटकर जाते हैं, तो लगता है जैसे चिरकाल के बाद हम किसी ऐसे पुराने घर में लौट आए हों जिसकी धुंधली-सी याद अब भी हमारे दिल के किसी कोने में है।

जंगली जीवन के लक्षण मनुष्य में अब भी हैं

मनुष्य का जन्म और पालन-पोषण जंगलों में ही हुआ। इसलिए वन्य प्रदेशों को मानव-जाति का पालना कहा गया है। वैज्ञानिकों का मत है कि मनुष्य के भीतर जो डर और खुशी की जन्मजात भावनाएं हैं, वे उसके आरंभिक जीवन के अनुभवों की ही धुंधली यादें हैं। उदाहरण के लिए, प्राचीन काल में मनुष्य अंधकार से सचमुच बहुत डरता था, क्योंकि अंधेरा होने के बाद खतरनाक जीव-जंतु शिकार करने निकल पड़ते थे, यह डर मनुष्य के भीतर समाया हुआ है; इसीलिए हम अब भी अंधेरे से डरते हैं।

प्राचीन काल में हमारे पुरखे लकड़ियाँ जलाकर जंगली जीव-जंतुओं से सुरिक्षत रहते थे। अब परिवार के लोग अंगीठी जलाकर, उसके चारों ओर बैठकर आग तापते हैं। असल में ऐसा करके—और यह अनुभव किये बिना—एक तो वे आग से गर्मी और दूसरे जंगली जानवरों से सुरक्षा पाते हैं। इसी तरह अपने आँगन में हम गमलों और क्यारियों में बड़े शौक से पेड़-पौधे लगाते हैं और पशु-पक्षी भी पालते हैं। वास्तव में, इन पेड़-पौधों का लगाना और पशु-पक्षियों को पालना अपने हजारों साल पहले के घरों का स्मरण करना ही है।

बच्चों को झूला झूलना और पेड़ों पर चढ़ना-उतरना अच्छा लगता है—शायद इसलिए कि बहुत प्राचीन काल में हमारे पूर्वज पेड़ों पर रहते थे।

बचपन का झूला और बुढ़ापे की 'रॉकिंग चेयर' भी शायद हमें यह स्मरण कराती है कि हमारे पुरखों के घर पेड़ों पर हुआ करते थे।

मनुष्य ने जब सती या ऊनी कपड़े बनाना सीखा तो उससे सदियों पहले जाड़े से बचने के लिए वह रोएं वाले जंतुओं की खालें ओढ़ लिया करता था। सो, आज भी फैशन करने वाली स्त्रियाँ तेंदुए और सफेद लोमड़ी की रोएंदार खाल से बने कोट शौक से पहनती हैं।

तुम्हें एक और उदाहरण देता हूँ—इस बार जानवरों की दुनिया से। तुमने देखा होगा कि तुम्हारा कुत्ता नींद लेने के लिए जमीन पर लेटने से पहले एक जगह पर गोल-गोल चक्कर काटता है। सच तो यह है कि कुत्ता बता नहीं

सकना कि ऐसा क्यों करता है और ऐसा प्रतीत होता है मानो वह घास-पात को पैरों तले रौंदकर अपने लिए बिछौना तैयार कर रहा हो। वैज्ञानिक इसकी व्याख्या इस तरह करते हैं कि युगों पहले जंगल में रहने वाले कुत्ते के पूर्वज भी अपनी तृण-शैया बनाने के लिए ऐसा ही किया करते थे। कुत्ते का स्वभाव आज भी वैसे का वैसा है।

इस तरह हमने देखा कि हालांकि आज हम जंगल में नहीं रहते, फिर भी मनुष्य में जंगली जीवन के लक्षण अब भी विद्यमान हैं। जब हम कभी बीच-बीच में प्राकृतिक स्थलों का भ्रमण करने जाते हैं तो वहाँ जाकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे हमारे भीतर रखी कोई बैटरी फिर से चार्ज हो गयी है और हमारे भीतर नई चुस्ती-फुर्ती आ गयी है।

आगे चलकर हम देखेंगे कि जंगली जगहें-जैसे वन—किस तरह हमारे भीतर न केवल नई स्फूर्ति भरते हैं, बल्कि हमें स्वस्थ और जीवित रखने के लिए भी वे कितने आवश्यक हैं।

वनस्पति बिन सब सून

इस ग्रह अर्थात् धरती पर हमारा जीवन भी हमारे आसपास के जीवन के अन्य रूपों से जुड़ा हुआ है। इस जीवन का एक बहुत बड़ा भाग वनस्पतियों की शक्ल में है। तुमने अपनी 'नेचर स्टडी' में पढ़ा होगा कि वास्तव में वनस्पतियों से ही सब वस्तुएं उत्पन्न होती हैं और सारे प्राणी केवल उनका उपयोग करते हैं। वास्तव में, वनस्पतियाँ ही एकमात्र ऐसी प्राणवान वस्तुएं हैं जो नये द्रव्य-पदार्थ उत्पन्न करती हैं। इन्हें प्राथमिक या मूल आहार कहते हैं। इनकी आवश्यकता प्रकट या अप्रकट रूप से सभी प्राणियों को होती है। जादूगर तो हवा में चीजें उत्पन्न करने का दम भरते हैं, लेकिन वनस्पतियाँ वास्तव में इन वस्तुओं को उत्पन्न करती हैं।

इन वनस्पतियों में क्लोरोफिल नामक रसायन होता है। सूर्य के प्रभाव से यह रसायन हवा से कार्बन डायोक्साइड गैस (जो सभी जीव-जंतु छोड़ते हैं) तथा पानी ग्रहण करता है और इन्हें आहार यानी 'ग्लूकोज़ शूगर' में बदल देता है। इसमें से कुछ आहार ये वनस्पतियाँ अपनी वृद्धि के लिए इस्तेमाल करती हैं। बाकी आहार स्टार्च बन जाता है, जिसे पेड़-पौधे अपने पत्तों, जड़ों आदि के रूप में संचित करके रखते हैं—बिल्कुल उसी तरह जिस तरह हम लोग खाने-पीने की अतिरिक्त वस्तुओं को अलमारी में संजोकर रखते हैं। इस संचित आहार को ही मनुष्य और दूसरे जीव-जंतु वनस्पतियों से 'छीन'

कर खाते हैं।

इस तरह वनस्पतियों से रहित संसार एक मृत संसार ही होगा, क्योंकि सबसे पहले वे सभी प्राणी, जो वनस्पतियों से आहार ग्रहण करते हैं, आहार के अभाव मे भूखे मर जाएंगे। परिणाम यह होगा कि जो प्राणी वनस्पतियाँ खाने वाले जीवों को खाते हैं, वे भी मर जाएंगे। आओ, एक उदाहरण लें। जंगली बिल्लियाँ, बिलाव और नेवले तथा इसी प्रकार के कुछ दूसरे जंगली जंतु पक्षियों का आहार करते हैं। पक्षी भी सूँडी-इल्ली यानी कैटरपिलर और कीड़े-मकौड़े खाते हैं। कैटरपिलर और कीड़े-मकौड़े वनस्पतियाँ खाते हैं।इस तरह तुम देखोगे कि पशु-पक्षी, कीड़े-मकौड़े और वनस्पतियाँ—इन सबसे जीवन की एक श्रृंखला-सी बनती है। अब यदि इसकी एक भी कड़ी टूट जाए, तो क्या सारी श्रृंखला ही चटक नहीं जाएगी?

केवल इतना ही नहीं, संसार में वनस्पतियाँ न हों तो प्राणियों को शुद्ध वायु भी नसीब न हो। वनस्पतियों से एक तो जीवनदायी आक्सीजन गैस निकलती है दूसरे पेड़-पौधे उस प्राणनाशक कार्बन-डायोक्साइड को भी अपने भीतर सोख लेते हैं जो बाकी प्राणी छोड़ते हैं।

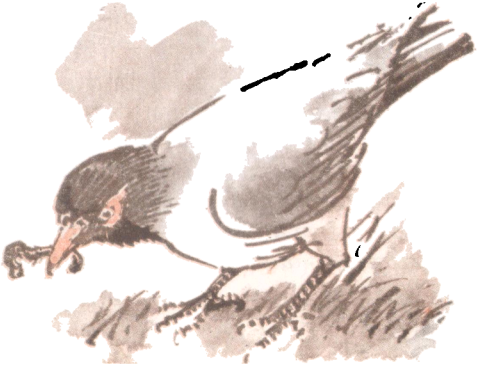

दुर्भाग्य से, सभ्य मनुष्य कारों और कारखानों की चिमनियों के माध्यम से वायु मंडल में अधिकाधिक कार्बन-डायोक्साइड और इसके साथ-साथ दूसरी हानिकारक गैसें भी छोड़ रहा है। ज्यों-ज्यों आबादी तथा इसके साथ साथ कारों और कल-कारखानों की संख्या बढ़ती जाती है, वायु भी अधिकाधिक दूषित होती जाती है। यही कारण है कि इन दिनों हम अकसर 'प्रदूषण' की चर्चा सुनते हैं।

मनुष्य निर्मित मरुस्थल

अब सहज ही विश्वास नहीं होता कि आज जहाँ 'सहारा' मरुस्थल है, वहाँ किसी समय हरी-भरी धरती और घने बन थे। आज उत्तर अफ्रीका का एक बड़ा भू-भाग रेगिस्तान है। पर ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में यूनान के प्रसिद्ध इतिहासकार हिरोडोटस ने बड़े उल्लास के साथ लिखा था कि अफ्रीका के विशाल वनों में जंगली जीव-जंतुओं की कितनी भरमार है। हिरोडोटस ने यह भी लिखा है कि वहाँ की धरती के कुछ खंड इतने उपजाऊ हैं कि 'अनाज की खेती के मामले में वे दुनिया के किसी भी देश का मुकाबला कर सकते हैं'।

यही नहीं, रोमन युग में भी उत्तर अफ्रीका में अनेक नदियाँ और झीलें थीं। वहाँ की धरती इतनी उपजाऊ थी कि रोम के इतिहासकार प्लिनी ने इसे 'दुनिया का अनाज भंडार' कहा था। रोम के लोग मिस्र देश को 'रोटी की टोकरी' कहा करते थे। उत्तर अफ्रीका में इतने घने जंगल थे कि रोम के लोग अपने खेलों के लिए अधिकाँश जीव-जंतु वहीं से मंगाते थे। कहते हैं कि सम्राट आगस्तस ने सिर्फ तीन खेलों के लिए ही उत्तर अफ्रीका से 3,500 जीव-जंतुओं का आयात किया था।

पुरानी कहावत है कि 'सभ्यताओं से पहले वन होते हैं और उनके बाद रेगिस्तान बनते हैं'। प्राचीन काल में अनेक साम्राज्य (जैसे मिस्र, बाबुल,

ईरान, यूनान) ऐसी भूमि पर थे जो बड़ी उपजाऊ थी। वहाँ बहुत सारी नदियाँ, झीलें और वन भी थे। आज ये देश रेगिस्तानी पट्टियों या अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में हैं। वहाँ के वन आदि नष्ट हो चुके हैं। धरती इतनी दरिद्र है कि लोगों का निर्वाह भी दुष्कर है। क्यों?

वनों की अत्याधिक कटाई से उपजाऊ धरती शुष्क और बंजर बन जाती है। बहुत प्राचीन काल में भी बुद्धिमान और दूरदर्शी लोग चिंता प्रकट करते रहते थे कि इस तरह प्रकृति को क्यों नष्ट किया जा रहा है। यूनानी दार्शनिक सुकरात ने अपने देश के लोगों को सूचित करते हुए कहा था कि वे इमारती लकड़ी वगैरह के लिए जंगल के पेड़ों को न काटें और अपने पहाड़ों पर बहुत अधिक संख्या में जानवरों को न चरायें। अठारहवीं शताब्दी के अंत में अमेरिका को भी सावधान कर दिया गया था कि न्यू इंग्लैंड में जंगलों की अधिक कटाई से नदियाँ सूखती जा रही हैं। इसका नतीजा यह हो रहा है कि सुखा पड़ने लगा है और वायुमंडल भी दूषित हो रहा है। पर स्वार्थी और लापरवाह लोगों ने इन चेतावनियों को अनसुना कर दिया। परिणाम वही हुआ जो होना था: वहाँ की धरती सूखकर एकदम बंजर बन गयी।

जिन दिनों यह किताब लिखी जा रही थी, उन्हीं दिनों उपग्रहों से लिये गये चित्रों से पता चला कि केवल 1976 में ही दक्षिण अमेरिका में अमेज़न की विशाल वनभूमि में उद्योग चलाने और पशुशालाएं बनाने के निमित्त एक लाख वर्ग किलोमीटर जंगलों को काट डाला गया। वैज्ञानिकों का कहना है कि यदि पेड़ों की इस तरह अंधाधुंध कटाई बंद नहीं करवाई गई तो पैंतीस वर्षों के भीतर ही इन अछूते वनों की पचास लाख वर्ग किलोमीटर भूमि एकदम उजाड़-वीरान हो जाएगी। अमेज़न के जंगल धरती पर वनस्पतियों का सबसे समृद्ध भंडार है और संसार के लिए आक्सीज़न के एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत का भी काम करती हैं। यही नहीं, इन जंगलों में 14,712 किस्म के जीव-जंतु पाए जाते हैं और इनमें भी 8,000 से अधिक जीव-जंतु तो ऐसे हैं जो अन्यत्र नहीं मिलते।

एक और उदाहरण ला। पापुआ (न्यू गिनी) में पुरानी नदी घाटी में अनेक पहाड़ी नदियों का प्रचुर जल आकर जमा होता रहता है। अब वहाँ निकट के विशाल क्षेत्रों के लिए पन-बिजली तैयार करने की योजना बनाई जा रही है। दुर्भाग्य से, योजना का एक उद्देश्य यह भी है कि अति उर्वर निचले क्षेत्रों में अछूते वनों से इमारती लकड़ी निकाली जाएगी और अन्य इलाकों में उद्योग स्थापित किए जाएंगे। इसका परिणाम क्या होगा: बहुत बड़े पैमाने पर जंगलों की कटाई शुरू हो जाएगी और कुछ अनोखे जंगली जीव-जंतुओ का प्राकृतिक ठौर-ठिकाना भी उनसे छिन जाएगा। इससे क्या ये जीव-जंतु नष्ट नहीं हो जाएंगे?

भारत में हम लोग भी यही भूल कर रहे हैं। लेकिन अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। हम अब भी अपने युगों पुराने वनों को बचा सकते हैं जहाँ प्राचीन राजा-महाराजा घोड़े पर सवार होकर धनुषबाण और भाले से सिंहों, हिरणों और दसरे वनैले जंतुओं का आखेट करते थे।

वनों की कटाई से हानि

वनों की कटाई से धरती की उर्वरता नष्ट कैसे होती है? पेड़ों की कटाई से मिट्टी बह जाती है, नदियाँ और झीलें सुख जाती हैं और बाढ़ भी आने लगती है। इससे भूमि की उर्वरता को हानि पहुँचती है।

पेड़ों और झाड़ियों की जड़े जमीन में मिट्टी को जकड़े रखती हैं और उसे बहकर जाने नहीं देतीं। फिर जड़ें और गिरे हुए पत्ते और वनस्पतियों के दूसरे तत्व, वर्षा का पानी सोखकर उसे सुरक्षित रखते हैं। ऐसा बहुत-सा पानी धीरे-धीरे नीचे धरती में जज़्ब हो जाता है। इससे बाढ़ नहीं आती और पानी बहकर व्यर्थ भी नहीं जाता। यदि इस पानी को बहने से रोकने वाली वनस्पतियाँ न हो, तो बाढ़ आ जाएगी और पानी व्यर्थ चला जाएगा। जो पानी धरती में जज़्ब होता रहता है, वह धरती के नीचे कुंओं में जाकर जमा हो जाता है। बाद में यही पानी नदियों और झीलों में पहुँचता है।

वनों में पाए जाने वाले पंचानवे प्रतिशत प्राणी या तो जंगल की सतह के ऊपर या पंद्रह सेंटीमीटर नीचे तक की गहराई में रहते हैं। अधिकतर प्राणी जीवाणु (यानी बैक्टीरिया) के रूप में होते हैं जिन्हें केवल अणुवीक्षक यंत्र (माइक्रोस्कोप) से ही देखा जा सकता है। यों तो जीवाणु बहुत सुक्ष्म होते हैं लेकिन भूमि को स्वस्थ और उपजाऊ बनाए रखने के लिए बड़े उपयोगी हैं।

जीवाणु केंचुए, कीड़ें, फफूंद और धरती की सतह के नीचे पाए जाने वाले

अनेक दूसरे प्राणी एक-साथ मिलकर ऊपर की धरती को उपजाऊ बनाते हैं। तभी तो यह धरती सभी प्राणियों के रहने योग्य बनी है। इस काम में वनस्पतियाँ, जीवाणु, कीड़े-मकौड़े और दूसरे जीव-जंतु सभी सक्रिय योग देते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि पेड़-पौधे प्राथमिक आहार उत्पन्न करते हैं, जिसके बिना कोई प्राणी (वह चाहे शाकाहारी हो या मांसाहारी) जीवित नहीं रह सकता। वनस्पतियाँ आक्सीजन छोड़ती हैं, जिसके बिना कोई प्राणी साँस भी नहीं ले सकता। वनस्पतियों के बिना यह धरती वायुहीन, जलहीन, जीवनहीन संसार बनकर रह जाएगी—बिल्कुल वैसी ही जैसी कि चंद्रमा है। यही कारण है कि हजारों पेड़-पौधों से हरे-भरे वन सभी प्राणियों के लिए अमूल्य हैं।

निस्संदेह वन हमें स्वस्थ और जीवित रखने के लिए बहुत आवश्यक हैं।

विश्व की सबसे बड़ी और सबसे पुरानी जानदार वस्तुएं

यदि कोई तुमसे यह पूछे कि आज संसार में सबसे बड़ी जानदार वस्तु कौन-सी है तो तुम शायद हाथी या ह्वेल का नाम लोगे। पर तुम्हारा यह उत्तर सही नहीं होगा। आज दुनिया की सबसे बड़ी जानदार वस्तु वनस्पतियों के संसार में है और वह है - विशाल सिक्वाए पेड़ की एक जाति, जो कैलिफोर्निया (संयुक्त राज्य अमेरिका) में पाई जाती है। यह नब्बे से अधिक ऐसे वृक्षों का एक झुंड है जिसे 'अल्वारिस का विशाल कुंज' कहते हैं।

इनमें से कुछ पेड़ लगभग सौ मीटर ऊँचे हैं। लेकिन इस जाति का सबसे ऊँचा पेड़ (जिसके बारे में 1963 में ही जाकर पता चला था) उत्तर कैलिफोर्निया के तट पर धुँधली घाटी में है। इसकी ऊँचाई 112 मीटर है।

लगभग एक शताब्दी पहले आस्ट्रेलिया में एक ऐसे यूकलिप्टस पेड़ का पता चला था जिसकी ऊँचाई शिखर चटक जाने के बाद भी 132 मीटर थी पर वह पेड़ मर चुका है इसलिए कैलिफोर्निया का वह 112 मीटर ऊँचा विशाल पेड़ ही आज धरती पर सबसे ऊँचा पेड़ है।

आओ, अब जरा इन विशाल पेड़ों के व्यास की भी थोड़ी चर्चा कर लें। कैलिफोर्निया के विशाल कुंज में कुछ पेड़ों के तने का मूल 20 मीटर व्यास से भी अधिक है। पर मैक्सिको में मोंटेजुमा सरू यानी साइप्रस के तने के मूल का व्यास 35 मीटर है। हमारे अपने देश भारत में बरगद के कुछ पेड़ 4,000

वर्ग मीटर धरती घेरते हैं, पर वास्तव में इन पेड़ों की सैंकड़ों शाखाएं ही हैं जो धरती में जड़ पकड़कर इतने विशाल पेड़ का आभास देती हैं। इसलिए वह एक पेड़ नहीं, पेड़ का पूरा परिवार होता है।

आज दुनिया में सबसे पुरानी सजीव वस्तु भी एक वृक्ष ही है, और वह भी कैलिफोर्निया में है। कैलिफोर्निया के व्हाइट माउंटेन्स (श्वेत पर्वतों) पर 'बिसलकोन' देवदारु के पेड़ हैं जो 4,000 वर्ष से भी अधिक पुराने हैं। इनमें से एक पेड जो अत्यंत प्राचीन होने के कारण 'मेथुसेलाह' नाम से प्रसिद्ध हो गया है, 4,600 वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। इतनी विलक्षण आयु देखकर तुम्हें अचरज नहीं होता, जो लिखित इतिहास-काल से भी प्राचीन है।

1— मेथुसेलाह नूह का नाव से पूर्व के एक वयोवृद्ध का नाम है, जिसने 969 वर्ष की आयु पायी थी, इसलिए मेथुसेलाह दीर्घायु का प्रतीक है।

अब मैं कुछ ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करूंगा जो इस पेड़ के जीवन-काल में घटीं। जब 755 ईसापूर्व रोम की नींव पड़ी, तब मेथुसेलाह पेड़ की आयु लगभग 1,870 बरस की थी।

560 ईसापूर्व जन्मे महात्मा बुद्ध इस पेड़ से लगभग 2,000 साल छोटे थे। जब यूनान का बादशाह सिकंदर सिंधु नदी को पार करके भारत में प्रविष्ट हुआ, तब यह पेड 2,400 साल का हो चुका था। जब ईसा मसीह का जन्म हुआ (सही वर्ष 4 ईसा पूर्व है), तब मेथुसेलाह 2,600 वर्ष का हो चुका था।

जब पेगंबर मुहम्मद का जन्म हुआ (569 ईस्वी में), तब मेथुसेलाह की उम्र लगभग 3,200 वर्ष की हो चुकी थी। जब आगरा में रौज़ा ताजमहल का निर्माण हुआ यह विलक्षण पेड़ सवा चार हज़ार साल पुराना हो चला था।

अब तुम पूछोगे कि वैज्ञानिकों को कैसे पता चलता है कि ये पेड़ कितने पुराने हैं? अधिकांश पेड़ों पर हर साल नई लकडी का एक वलय-सा बनता

जाता है। ये वलय यानी चक्र बिल्कुल वैसे ही होते हैं जैसे हमारी उंगलियों के छापे। पेड़ के इन वलयों की संख्या गिनकर उनकी आयु का सही अनुमान लगाया जा सकता है। वक्षों पर बने इन वलयों को गिनकर उसकी आयु का अनुमान लगाने वाले वैज्ञानिकों को अंग्रेजी में डेंड्रोक्रानालोजिस्ट यानी 'वृक्षकालक्रम विशेषज्ञ' कहते हैं। इन लोगों ने प्राचीन जीवित वृक्षों के भीतरी वलयों की तुलना प्राचीन मृत पेड़ों के ठूँठों में बने वलयों से करके ऐसे पेड़ों का पता लगाया है जो लगभग 8,200 वर्ष पुराने हैं।

हाल ही में एक नई वैज्ञानिक विधि निकाली गयी है जिसे 'कार्बन 14 तिथि-निर्धारण विधि' कहते हैं। इस नई विधि से तिथि का पता इस प्रकार लगाया जाता है: सभी जीवधारी वस्तुओं में कुछ मात्रा में कार्बन 14 नामक रेडियोधर्मी तत्व होते हैं। जब कोई वस्तु मरती है, तो यह कार्बन 14 तत्व एक निश्चित हिसाब से सड़ने लगता है। बाकी का काम सरल है। मृत वस्तु में कार्बन 14 की जितनी मात्रा बची रह जाती है, उसकी नाप-जोख करके यह पता लगाया जा सकता है कि अमुक वस्तु की मृत्यु कितने वर्ष पहले हुई।

कुछ समय पूर्व तक वैज्ञानिक इतना ही बता पाते थे कि पिछले चार दशकों यानी 40 वर्षों में निरंतर कार्बन 14 का जमाव या एकत्रीकरण होता है। पर इससे पहले के समय के बारे में उन्हें कोई निश्चित ज्ञान नहीं था। यहीं पर ब्रिसलकोन देवदारु से मदद मिली। अब वैज्ञानिक चालीस बरस की जगह 8,200 वर्षों तक पुरानी वस्तुओं की आयु बता सकते हैं।

अफसोस है कि नेवाड़ा (अमेरिका) में उगने वाले मेथुसेलाह से भी प्राचीन ब्रिसलकोन देवदारु के पेड़ को 1964 में काट डाला गया। वृक्षकालक्रम विशेषज्ञों ने उसकी आयु 4,900 वर्ष तक कूती है। क्या यह दुख की बात नहीं है कि मनुष्य जैसे प्राणी ने, जो स्वयं मुश्किल से 100 वर्ष भी जीवित नहीं रहता प्रकृति के इतने भव्य स्मारक को कुछ ही दिनों में काटकर फेंक दिया।

जंगली जीव-जंतुओं के बारे में भ्रांतियाँ

जब हम वन्य प्रदेशों की चर्चा करते हैं तो बरबस हमारा ध्यान वहाँ रहने वाले वन्य प्राणियों की ओर भी जाता है। दुर्भाग्य से वन्य प्राणियों के बारे में हमारे मन में अनेक भ्रांतियाँ और अंधविश्वास हैं।

उदाहरण के लिए जैसे कि आम लोगों की धारणा है, भालू अपने शिकार का आलिंगन कभी नहीं करता। जब भालू हमला करता है तो दूसरे अनेक जीव-जंतुओं की भांति वह भी अपने दाँतों और पंजों से काम लेता है।

शुतुरमुर्ग रेत में कभी सिर नहीं छिपाता। शुतुरमुर्ग की गर्दन बड़ी लंबी होती है। इसलिए वह अपना सिर नीचे झुका लेता है, ताकि कोई उसे देख न सके। इस हालत में वह झाड़-झंखाड़ में से चोरी-चोरी देखता रहता है कि कहीं कोई दुश्मन आसपास घात लगाए न बैठा हो।

भेड़िए कभी झुंड बनाकर शिकार नहीं करते। केवल बंजर टुंड्रा (शीत कटिबंध में बर्फ से ढके प्रदेशों) के मैदानों में ही, जहाँ शिकार दुर्लभ होता है, भेड़ियों के अनेक जोड़े या कभी-कभार भेड़ियों के छोटे-छोटे अनेक परिवार एक ही शिकार की लीक या गंध का पीछा करते हैं। उन्हें देखकर ऐसा लग सकता है कि वे बड़ा झुंड बनाकर शिकार की टोह में हो।

आम लोगों की यह धरणा है कि सेह यानी साही अपने काँटों का इस्तेमाल बाण की तरह करता है और उन्हें दुश्मन पर चलाता है। सच्चाई तो यह है

कि साही न ऐसा करता है, और न ही कर सकता है। असल में साही करता यह है कि अपने काँटों को सीधा खड़ा करके दौड़ता है और दुश्मन के शरीर में उन्हें चुभाने का यत्न करता है। अगर तुमने जिम कारबेट की पुस्तकें पढ़ी हैं, तो तुम्हें मालूम होगा कि कभी-कभी बाघ भी साही के काँटों की गहरी मार से अपाहिज हो जाता है। नतीजा यह होता है कि अक्सर ऐसे बाघ लाचार होकर मनुष्य-भक्षी बन जाते हैं, क्योंकि जंगली जानवरों की अपेक्षा मनुष्य का शिकार करना सुगम होता है।

प्रायः हम किसी चीज़ को देखकर भड़क उठते हैं। इस तरह भड़कने वाले आदमी के लिए अंग्रेजी में एक मुहावरा है और कहते हैं कि वह आदमी अमुक चीज को देखकर ऐसे भड़कता है जैसे 'साँड़ लाल कपड़ा देखकर' भड़कता है। ऐसी धारणा है कि साँड़ लाल कपड़े को देखते ही भड़क उठता है। पर

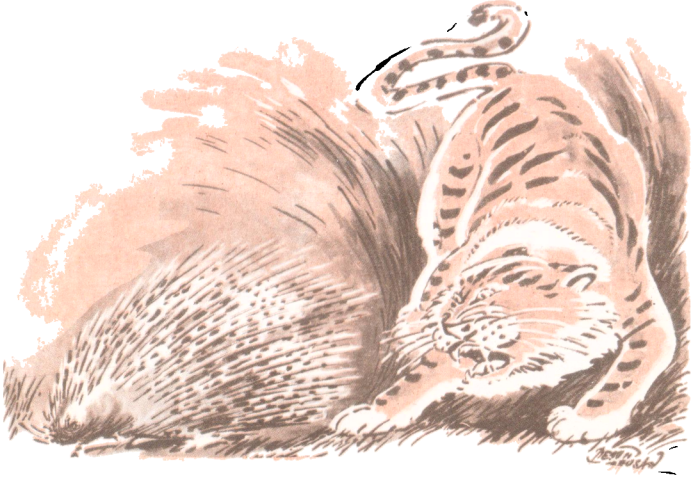

असलियत यह है कि साँड़ को रंगों की पहचान नहीं होती। अधिकांश जीव-जंतुओं को इस दुनिया में सब कुछ काला-काला या सफेद या बीच-बीच में धूसर या मटमेला दिखाई पड़ता है।

पर इसी से हमें इतराना नहीं चाहिए कि मनुष्य दूसरे जीव-जंतुओं से कहीं श्रेष्ठ है, क्योंकि कुछ सुप्रसिद्ध यूनानी भी वर्णांध थे, यानी उन्हें भी रंगों की पहचान नहीं थी। होमर की दृष्टि में समुद्र का रंग 'अंगूरी' था। जेनोफन को इंद्रधनुष में केवल तीन ही रंग दिखाई पड़ते थे—जामुनी, पीला और लाल। यही नहीं, अरस्तू की दृष्टि में "इंद्रधनुष तिरंगा" था।

लेकिन हम चर्चा कर रहे थे कि मनुष्य के मन में वन्य प्राणियों के बारे में कैसी-कैसी भ्रांतियाँ और अंधविश्वास हैं।

इनमें भी शायद बेपर की उड़ान यह है कि अजगर आदमी को उठाकर ले जाता है और फिर उसे निगल लेता है। वास्तव में, सच्चाई इसके बिल्कुल विपरीत है जंगलों में रहने वाली कुछ जातियों के लोग अजगर का माँस बड़े चाव से खाते हैं।

बहुत समय पहले एक दिन हम शिकार पार्टी के साथ जंगल में आखेट करने गये थे। वहाँ हमने एक अजगर मारा। उसके पेट में से एक छोटा हिरण निकला, जिसे कुछ देर पहले ही अजगर ने निगला था। हमारे साथ जंगल में जो ग्रामीण आए थे, उन्होंने उस अजगर का और हिरण का माँस पकाकर खाया भी। भारत में अभी तक एक भी ऐसी घटना प्रकाश में नहीं आई जिसमें अजगर ने (मनुष्य को निगलने की बात तो दूर है) किसी मनुष्य पर कभी हमला भी किया हो।

देश के कुछ हिस्सों में लोग अजगर को 'कीड़ा' कहते हैं। इससे प्रकट होगा कि वे अजगर को कितना अहिंसक समझते हैं। इसके विपरीत, असम के कुछ हिस्सों में लोग जंगली हाथी को आदरपूर्वक 'महाराज' कहते हैं।

साँप मनुष्य का बैरी नहीं

मद्रास सर्प उद्यान के निदेशक रोमलूस व्हिटेकर को साँपों के बारे में जितना ज्ञान है, इतना शायद किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं होगा। साँपों के बारे में उन्होंने लिखा है, "वे मनुष्य से बचते हैं और डरते भी हैं, क्योंकि मनुष्य उससे कहीं बड़ा प्राणी है। जिस तरह तुम जंगली हाथी के पीछे पड़ने की कभी सोच भी नहीं सकते, उसी तरह साँप भी आदमी का कभी पीछा नहीं करता।"

दूसरे वन्य प्राणियों की भाँति ही साँप भी मनुष्य से दूर ही रहना चाहता है। विषैले से विषैला साँप भी हमें निकट आते देख इधर-उधर सरक जाता है। कभी हम उसके एकदम निकट जा भी पहुँचें, तो वह फुफकारकर हमें सावधान करता है।

साँप एकदम बहरा होता है। वैसे वह किसी को डसता नहीं है, लेकिन कभी अंधेरे में या जब साँप घास में या सड़े पत्तों के नीचे लेटा हो और अनजाने में आदमी का उस पर पैर पड़ जाये तो वह डस भी सकता है। घास में साँप घात लगाने के लिए नहीं, बल्कि छिपने के लिए लेटता है। साँप मनुष्य को केवल उसी दशा में डँसता है जब वह देखता है कि वह घिर गया है या उस पर हमला किया जा रहा है। अक्सर ऐसी दशा में भी साँप डसता नहीं। इसे सिद्ध करने के लिए तुम्हें कुछ उदाहरण देता हूँ।

तब मैं सात बरस का था, उन दिनों असम में बिजली भी नहीं थी। मेरी बहन भी पाँचेक बरस की थी। उन दिनों साँझ की बेला में हम लालटेन की रोशनी में कपड़े बदल रहे थे। तभी मेरी बहन की नजर फर्श पर पड़ी किसी चीज पर गयी। उसने समझा कि रिबन है। झट हाथ बड़ाकर उसने उसे उठा लिया। वह उसकी उंगलियों में सरकने लगी, पर उसने कोई नुक्सान नहीं पहुँचाया। असल में वह करैत था, जो कि एक बड़ा सर्प होता है।

इसके एक साल बाद मैं कुछ बच्चों के साथ आँगन में गेंद खेल रहा था। खेलते-खेलते हमारा गेंद उछला और मेंड़ के साथ वाली एक मोरी में चला गया। मैंने मोरी में हाथ डालकर गेंद निकाल भी लिया फिर उत्सुकतावश जो मैंने मोरी में झाँककर देखा तो करीब बीस सेंटीमीटर नीचे मुझे एक काला नाग दिखाई दिया जिसके खुले मुँह में से दो जिह्वाएं लपलपा रही थीं। मोरी असल में नाग की बांबी थी। पहले तो गेंद मोरी के भीतर गया। फिर मैंने भी हाथ डालकर गेंद को निकाला। मेरे हाथ और साँप के विषैले दाँतों के बीच पाँचेक सेंटीमीटर का अंतर रह गया था। फिर भी, नाग ने मुझे डसा नहीं (हाँ, एक बार अपनी पालतू बिल्ली की दुम पर अचानक मेरा पैर पड़ गया था और उसने मुझे काट लिया था)।

मेरे एक भाई मध्य प्रदेश में रहते हैं। एक दिन शाम को वह अपनी पत्नी के साथ चहल कदमी करने निकले। मेरी भाभी को लगा कि उसके टखनों के पास साड़ी के साथ कोई चीज़ चिपकी हुई है। भाभी ने समझा कि जमीन पर कोई टहनी पड़ी है। बस, पैर झटककर भाभी ने उसे हटाना चाहा। पर चकित रह गयी जब वह चीज फुफकारते हुए सर-सर करती भागी। अरे! वह तो नाग था!

मेरी एक आँटीं उड़ीसा में रहती है। गर्मियों की एक रात वह पानी पीने उठी। जानती थी कि पानी का घड़ा कहाँ रखा है। इसलिए टार्च जलाकर वह किसी की नींद में विघ्न नहीं डालना चाहती थी। बस, उठकर वह घड़े तक गयी ।घड़े के ऊपर से पकड़कर जो वह गिलास पानी में डालने लगी तो

किसी नरम चीज से उसका हाथ छू गया। चीख मारकर वह पीछे हट गयी। तत्काल किसी ने उठकर टार्च की रोशनी फैंकी, तो क्या देखते हैं कि घड़े की गर्दन पर एक नाग कुंडली मारे बैठा है। असल में नाग ठंडक पाने के लिए ही घड़े से लिपटा हुआ था।

उड़ीसा में मेरे नाना का बगीचा है। एक बार बगीचे में सूखे पत्तो के ढेर में एक अजगर चैन से लेटा था। माली ने समझा कि लकड़ी का कुंदा पड़ा है। बस, उसके ऊपर पैर रखकर वह खड़ा हो गया और पेड़ की झुकी हुई डाली से कुछ फल तोड़ने लगा। बेचारा अजगर माली के बोझ के नीचे

कुलबुलाया। तब जाकर मार्ली को पता चला कि वह भूल से अजगर पर खड़ा हो गया था। तत्काल वह नीचे कूद गया।

बहुत-से लोगों की यह धारणा है कि ऐसी अवस्था में अजगर मनुष्य को अपनी कुंडली में भींचकर मार डालता है। पर, सच पूछो तो, आज तक किसी अजगर ने मनुष्य को हानि नहीं पहुँचाई। जिम कारबेट ने 'जंगली लोर' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है: "मैंने आज तक नहीं सुना कि अजगर ने किसी मनुष्य को मारा हो।" मैं स्वयं लगभग 55 वर्षों से भारत के अनेक जंगलों में घूमता फिरा हूँ और किसी ने भी मुझे यह नहीं बताया कि जंगलों में रहने वाली जातियाँ अजगर से डरती हैं।

एक और उदाहरण लो। इससे स्पष्ट हो जाएगा कि जब तक साँप को छेड़ा न जाए, वह किसी को नुक्सान नहीं पहुँचाता। ऊपरी बर्मा में एक फाउगी-चोंग यानी बुद्ध विहार था, जिसके अहातें में बहुत-से साँप रहते थे। साँप और बौद्ध भिक्षु लगभग साथ-साथ ही रहते थे, पर कभी कोई ऐसी-वैसी घटना नहीं घटी। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान मित्र सेनाएं उस क्षेत्र से हट गई और उनकी जगह जापानी सेनाओं ने ली। बौद्ध भिक्षु और साँप शांतिपूर्वक रहते रहे। कुछ वर्षों के बाद बर्मा में जनरल विनगेट के छापामार सैनिकों ने, जिन्हें 'चिंदित' कहते हैं, रात को आक्रमण कर दिया। बुद्ध विहार के भीतर और उसके आसपास घमासान लड़ाई हुई और जापानियों को वहाँ से खदेड़ दिया गया। बाद में जब घायलों और मृतकों की गिनती की गई, तो पता चला कि लड़ाई में मरने वाले छापामार सैनिकों की संख्या केवल 62 थी, लेकिन साँपों के डसने से 160 सैनिक मारे गये थे।

'खतरनाक' प्राणियों से कहीं अधिक घातक मनुष्य

मनुष्य द्वारा जंगली जीव-जंतुओं के साथ लड़ी गई लड़ाई इस पृथ्वी पर सबसे लंबी लड़ाई है। दुख की बात तो यह है कि यह लड़ाई आज भी जारी है।

प्राचीन काल में अपने अस्तित्व के लिए मनुष्य जंगली जानवरों से लोहा लेता था। फिर जब मनुष्य ने खेती-बाड़ी करना और पशु पालना सीखा, तब भी वह अपनी फसलों और ढोर-डंगरों की रक्षा के लिए ही जानवरों से लड़ता रहा। सच है कि वह अपने आहार के लिए जंगली जानवरों की हत्या करता था, पर उसके पास जो हथियार-औजार थे, वे एकदम अनगढ़ थे। इसलिए वह इस स्थिति में था ही नहीं कि जीव-जंतुओं का बड़े पैमाने पर वध करता। पर ज्यों-ज्यों मनुष्य ने अधिकाधिक घातक अस्त्र-शस्त्र ईजाद किये, वह और बड़े पैमाने पर इन निरीह प्राणियों का नाश करने में जुट गया।

शुरू से ही मनुष्य न केवल उन्हीं जंगली जीवों का वध करता आया है जिन्हें वह खतरनाक समझता था, बल्कि उसने ऐसे जीवों को भी निर्ममतापूर्वक मारा है जो खतरनाक नहीं हैं। बस उनका माँस, चर्बी, खाल, रोएं और पंख वगैरह प्राप्त करने के लिए वह उनकी हत्या करता रहा। मनुष्य ने बड़ी बेरहमी से वनों को उजाड़ा, झीलों और कच्छ प्रदेशों का पानी बहाकर उन्हें सुखाया है। नदियों पर बाँध बाँधे हैं या उनकी धाराओं को

मोड़ा है। ऐसा करके मनुष्य ने हजारों प्राणियों की जानें लीं, उन्हें बेधर किया, उनका दाना-पानी उनसे छीना।

निस्संदेह मनुष्य इस धरती पर सबसे निर्मम और घातक प्राणी है। जरा देखो तो, केवल भारत में ही उसने कितने ही जीव-जंतुओं का करीब-करीब सफाया ही कर डाला है। गैंडा, सिंह, काला मृग, दलदली हिरण, घड़ियाल—ये कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनकी नस्ल को मनुष्य ने लगभग मिटा डाला है। मनुष्य ने अपने हाथों से जंगलों को अंधाधुंध काटा-उजाड़ा है, झीलों और कच्छ प्रदेशों का पानी बहाकर उन्हें सुखाया है—इन सब बातों का दुष्परिणाम यह हुआ है कि इन प्राणियों की संख्या इतनी घट गई है कि अब विवश होकर उन्हें संरक्षित प्राणी घोषित करना पड़ा है, यानी कानून बनाकर इनके वध की मनाही कर दी गई है।

मनुष्य ने साँप, सिंह, बाघ और जेगुआर को 'खतरनाक' प्राणियों की संज्ञा दी है। यदि ये प्राणी सचमुच खतरनाक होते, तो युगों पहले भारत, बर्मा, श्रीलंका, मलय, अफ़्रीका, दक्षिण अमेरिका आदि देशों के घने जंगलों में बसे छोटे-छोटे गाँवों का एकदम सफाया हो गया होता। पर असल में हुआ इसके बिल्कुल उलट है। इनमें से अधिकतर देशों में वन्य प्राणियों की संख्या तो लगातार घटती चली गई है, और मनुष्य की आबादी में कई गुणा वृद्धि हुई है।

कई शताब्दियों के बाद 1830 में कहीं जाकर दुनिया की आबादी 100 करोड़ तक पहुँची थी। पर उसके बाद केवल सौ वर्षों में ही यानी 1930 में 100करोड़ की और आबादी जुड़ गई। अगले तीस वर्षों में यानी 1960 में 100 करोड़ की जनसंख्या और बढ़ गई। लेकिन उसके बाद पंद्रह वर्षों में तो कमाल ही हो गया। अनुमान है कि 1960 से 1975 तक कुल पंद्रह वर्षों में दुनिया की जनसंख्या में 100 करोड़ और लोगों की वृद्धि हुई।

साँप का डर बीते दिनों की बात

अब सहज ही समझ में आता है कि सभी वन्य प्राणी मनुष्य से इतना क्यों डरते हैं। मनुष्य सदा ही वन्य प्राणियों का दुश्मन नंबर एक रहा है। फिर समझ में नहीं आता कि मनुष्य को वन्य प्राणियों से इतना डर क्या लगता है।

यदि बंदर साँप से डरता है, तो समझ में आने वाली बात है, क्योंकि बंदर आज भी पेड़ों पर रहता है। अजगर जैसे बड़े साँप बंदर का चाव से भक्षण करते हैं। इसलिए साँप को देखते ही डर के मारे बंदरों का खून सूखने लगता है।

एक बार न्यूयार्क के ब्रांक्स चिड़ियाघर में 'बुशमैन' नामक एक चिंपाज़ी अपने पिंजरे से निकल आया। उसे तरह-तरह के प्रलोभन दिए गए कि किसी तरह वह अपने पिंजरे में वापस चला जाए। पर जब कोई उपाय कारगर सिद्ध नहीं हुआ, तो अंत में उसके रखवाले को एक युक्ति सूझी। उसने साँपघर से एक साँप निकाला और उसे आगे झुलाते हुए वह बुशमैन की तरफ बढ़ा। साँप को निकट आते देख बुशमैन की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई और अपनी जान बचाने की खातिर वह लपककर अपने पिंजरे में घुस गया।

बंदर साँप से डरता है, यह सहज-स्वाभाविक है। पर मनुष्य उस साँप से क्यों इतना भयभीत रहता है जो उसका बैरी नहीं और उसके रास्ते से हमेशा

दूर रहना चाहता है! जैसा कि दूसरे अध्याय में हमने देखा, मनुष्य के भीतर जो बहुत-से डर और खुशी की भावनाएं हैं, वे असल में प्राचीन काल में जंगलों में बिताए जीवन के 'अवशेष' ही हैं। मनुष्य की 'वानर अवस्था' में, यानी जिस युग में मनुष्य पेड़ों पर रहता था, उसके सबसे बड़े शत्रु थे—बड़े-बड़े साँप, जो अधिकतर पेड़ों पर ही रहते थे। प्रागैतिहासिक काल में समाए इस डर से मनुष्य आज तक पिंड नहीं छुड़ा पाया है—हालाँकि रहने की जगह के लिए अब साँपों और मनुष्यों में किसी प्रकार की कोई होड़ नहीं है।

बाघ मनुष्य का वैरी नहीं

जिस तरह हम साँपों से व्यर्थ ही डरते हैं, उसी तरह दूसरे प्राणियों के बारे में भी हमारा डर निराधार है। बाघ का ही उदाहरण लो। बहुत-से लोगों की यह धारणा है कि बाघ क्रूर और रक्त का प्यासा होता है और मौका देखते ही मनुष्य या पशु को मार डालता है। इससे मिथ्या बात और क्या हो सकती है।

जब मैं चौदह बरस का था, तो एक शाम साइकिल पर गौहाटी लौट रहा था। गौहाटी से लगभग पाँच किलोमीटर के अंतर पर कामाख्या पहाड़ी की तराई में। सड़क के लगभग दस कदमों के फासले पर एक बाघ चैन से लेटा आराम कर रहा था। उसके निकट पहुँचकर ही मैंने उसे देखा। फिर तो मैं खूब तेजी से पैडल मारते हुए भागा। बाघ ने मुझे अपने निकट से जाते हुए देख-भर लिया था। मुझे विश्वास है कि यदि बाघ बोल सकता, तो अवश्य ही दुलार-भरे स्वर में मुझ से कहता, "बेटे, डरो नहीं, निश्चिंत होकर जाओ।"

मेरे एक मित्र हैं ह्युग डायस। एक बार वह लंबी कार-यात्रा के दौरान बिहार से पलामू में से होकर जा रहे थे। घंटों गाड़ी चलाने से उनका शरीर ऐंठने लगा था। इसलिए उन्होंने सोचा कि क्यों न गाड़ी से थोड़ा उतरकर टाँगों को सीधा कर लूँ। करीब आधी रात की बेला थी। बस, उन्होंने कार वहीं रोकी, सिगरेट सुलगाई और एक सुनसान 'नाके' यानी चौकी के शैड

की तरफ चल पड़े। वैसे तो आकाश पर टूटी चूड़ी जितना चाँद था, पर बरामदे की छत के कारण शैड में धुप्प अंधेरा था।

लेकिन ज्योंही वह शैड के निकट पहुँचे, एक हल्की-सी गुर्राहट उनके कानों में पड़ी। बरामदे में कोई बाघ था। डायस को मालूम था (और हमें भी हमेशा याद रखना चाहिए) कि यदि सामने बाघ या सांड़ (या भौंकता हुआ कुत्ता भी) आ जाए, तो उसे देखकर कभी चीखने-चिल्लाने नहीं लग जाना चाहिए या भागने की भी कोशिश नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से जानवर हमेशा पीछे पड़ जाता है। इसलिए डायस वहीं साँस रोककर खड़े हो गए। कुछ ही पलों के बाद उन्हें हल्की-सी आहट सुनाई पड़ी। वह समझ गए कि बाघ बरामदे की दूसरी तरफ वाली सीढ़ियों से उतरकर जा रहा है तभी चाँद और सितारों के हल्के प्रकाश में वह क्या देखते हैं कि बाघ वहाँ से निकलकर निकट के जंगल में चला जा रहा है।

इन दो उदारहणों से सिद्ध होता है कि मनुष्य ने नाहक बाघ को बदनाम कर रखा है। अब एक क्षण के लिए अनुमान करो कि स्थिति इससे भिन्न होती तो क्या होता! मान लो, वहाँ कुछ बंदूकधारी आदमी घात लगाए बैठे होते और कोई बाघ यों ही टहलते हुए उधर आ निकलता, तो क्या वे आदमी उस बाघ को बख्श देते? क्या उसके प्राण न ले लेते?

अब तुम्हीं बताओ कि असल में क्रूर और रक्त का प्यासा कौन है—बाघ या मनुष्य?

बाघ जीवित रहने के लिए ही मारता है

बाघों से भरे सैंकड़ों वनों में प्रतिदिन हजारों आदमी पेड़ काटने जाते हैं। वहाँ वे शहद और कंद-मूल एकत्र करते हैं। पक्षियों और छोटे जीव-जंतुओं को फंदे लगाकर पकड़ते हैं। सड़कें बनाते हैं और रेल-पटरियाँ भी बिछाते हैं। स्त्रियाँ भी इन जंगलों में ईधन, महुआ और जंगली फल-फूल बटोरने जाती हैं। पशुओं के चारे के लिए घास-पात लाती हैं। बच्चे भी जंगलों मे ढोर-डंगरों और भेड़-बकरियों को चराने ले जाते हैं। इन स्त्री-पुरुषों और बच्चों को अक्सर बाघ भी दिखाई पड़ते हैं। बाघ भी उन्हें देखते रहते हें। लेकिन मनुष्य को अपने निकट आते देख वे तत्काल सटक जाते हैं या चुपचाप छिपकर बैठे रहते हैं।

कभी-कभार कोई भूखा बाघ किसी झुंड में से गाय-बैल या बकरी को मार भी लेता है, लेकिन अगर उसका प्राकृतिक शिकार (जैसे जंगली सूअर, हिरण आदि) सुलभ होता है, तो वह इन्हें हाथ तक नहीं लगाता।

अब तुम पूछोगे, "मनुष्य-भक्षी बाघ भी तो होते हैं?" इसका उत्तर यह है कि मनुष्य-भक्षी बाघों की संख्या न होने के बराबर है। बाघों में जितने भी बाघ मनुष्य-भक्षी होते हैं उनसे कहीं अधिक संख्या मनुष्यों में अपराध-वृत्ति के आदमियों की है। कोई बाघ तभी मनुष्य-भक्षी बनता है जब वह इतना कमजोर या सुस्त हो जाता है कि प्राकृतिक शिकार को मारने में सक्षम नहीं होता। अक्सर मनुष्य स्वयं किसी बाघ को मनुष्य-भक्षी बनने के लिए

मजबूर करता है। वह इस तरह कि मनुष्य बड़े अनगढ़ हथियारों का इस्तेमाल करता है या अनाड़ी शिकारी होता है और कभी-कभी बाघ को घायल करके या पंगु बनाकर छोड़ देता है। इस तरह असमर्थ हुए बाघों को अक्सर दूसरे बाघ, जंगली भैंसे या अन्य जंगली जानवर मार डालते हैं पर जो घायल बाघ जीवित रह जाते हैं, वे अनुभव से यह जान लेते हैं कि मनुष्य सहज ही हाथ आने वाला प्राणी है। इसलिए जब उनके सामने और कोई चारा नहीं रहता, तो वे पेट भरने के लिए मजबूरन मनुष्य-भक्षी बन जाते हैं।

कुछ अपवादों को छोड़कर बाघ तब तक किसी को नहीं मारता, जब तक वह भूखा नहीं होता। शायद सहज ज्ञान से ही वह समझता है कि अगर वह जानवरों की अंधाधुंध हत्या करेगा तो बहुत जल्दी उसके आहार का स्रोत चुक जाएगा। यह मेरे एक शिकारी मित्र लालू दवे के अनुभव से सिद्ध होता है।

एक दिन लालू मध्य प्रदेश में बाघ का शिकार करने गया। गर्मियों के दिन थे। उन दिनों वैसे भी जंगल में अधिकाँश नदियाँ और झीलें सूख जाती हैं। बाघ को प्रलोभन देने के लिए जंगल में उसने एक जगह एक भैंस बाँध रखी थी। उसके निकट उसने थोड़ा-सा चारा और फिर पानी से भरी एक कुंडी भी रख दी थी। स्वयं वह एक पेड़ पर चढ़कर बैठ गया था। झुटपुटा होते ही एक बाघ प्रकट हुआ। दबे पाँव चलकर वह पानी की कुंडी तक आया और लपलप करके सारा पानी पी गया और फिर चुपचाप जैसे आया था वैसे ही जंगल में लौट गया। निकट खड़ी भैंस की तरफ उसने आँख उठाकर भी नहीं देखा। बाघ असल में भूखा नहीं था, प्यासा था। इसीलिए भैंस को छोड़ वह पानी पीने में लगा रहा। लालू बड़ी आसानी से उस बाघ को गोली मार सकता था, पर उसके व्यवहार से वह इतना अभिभूत हुआ कि उसने बाघ को जाने दिया।

क्या अब भी तुम बाघ को क्रूर और रक्त का प्यासा जानवर कहना चाहोगे?

जंगल के सीधे-सच्चे लोग

वन्य प्रदेशों में केवल पेड़-पौधे और पशु-पक्षी ही नहीं होते। इन स्थानों पर अत्यंत प्राचीन काल से मनुष्य भी रहता आया है। भारत जैसे देश में आज भी लाखों की संख्या में स्त्री-पुरुष और बच्चे वन्य प्रदेशों में रहते हैं। ये लोग उसी प्रकार जंगल में जीवन बिताते हैं जिस प्रकार पशु-पक्षी, रेंगने वाले जंतु और कीड़े-मकौड़े। जंगलों में पहाड़ियों, वनों और नदी-नालों की तरह मनुष्य भी वहाँ के अभिन्न अंग हैं।

वन्य प्रदेशों में रहने वाला मनुष्य प्रकृति की गोद में जीवन व्यतीत करता है। वह कई दृष्टियों से उस 'सभ्य' मनुष्य से श्रेष्ठ है जो अक्सर घृणापूर्वक उसे 'जंगली' कहता है। ये लोग किसी भी तरह का लोभ-लालच नहीं करते। इनके संपर्क में आया कोई भी आदमी तुम्हें बताएगा कि प्रकृति से ही ये वनवासी लोग शहर-कस्बे में रहने वाले लोगों से कितने अधिक ईमानदार, मदद करने को तैयार और उदार भी होते हैं। यही नहीं, शहर के लोगों से वे कहीं अधिक स्वावलंबी भी होते हैं।

जंगल के निवासियों का सारा जीवन छोटे-छोटे समुदायों में व्यतीत होता है। इसलिए आसपास के प्राणियों से उनकी घनिष्ठता हो जाती है। उन्हें वह अपने घर का ही समझने लगता है। इसी तरह जब वह बाहर से आए लोगों के साथ भी हिल-मिल जाता है, तो उनके साथ भी वह अपनों जैसा ही

व्यवहार करने लगता है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि वह यह सब प्रेमवश करता है—बदले में कुछ पाने की लालसा से नहीं।

एक बार मैं किसी घने वन में गया। वहाँ एक ग्रामीण ने मेरे साथ बड़ी मित्रता का व्यवहार किया। जब मैं वहाँ से चलने लगा, तो उसकी सेवाओं का बदला चुकाने के लिए मैंने मूर्खतावश कुछ पैसे उसे देने चाहे। दुनियादारी तो उसे छू नहीं पाई थी। वह भलामानुस मेरे इस आचरण से बड़ा दुखी और नाराज हुआ। बोला, "मैंने तुम्हें अपना प्यार, अपना ममत्व दिया, बदले में मुझे तुम्हारा प्यार ही चाहिए था। जब हम इकट्ठे बाहर जाते थे तो दोनों एक-दूसरे की तकलीफें और गम और खुशियाँ बाँटते थे जो अन्न-जल हम अपने साथ ले जाते थे, उसे मिल-बाँटकर खाते-पीते थे। अब तुमसे रुपया लेकर क्या मैं बेईमान नहीं कहलाऊँगा?"

लगभग पंद्रह बरस पहले जब मैं मध्य प्रदेश में बस्तर के आदिवासी क्षेत्र में गया तो वहाँ सड़क के किनारे मुझे बस्तर के तत्कालीन राजा का घर दिखाई पड़ा। मकान में न तो ताला था और न ही कोई चौकीदार वहाँ था। कमरों में काफी फर्नीचर रखा था। गुसलखाने में वाश-बेसिन और लौटे-बर्तन भी रखे थे। मकान के अहाते में फल-फूल वाले पेड़-पौधे भी थे। कई वर्षों से मकान इसी हालत में था। पर मजाल कि आसपास रहने वाले ग्रामीण मकान की चीजों को हाथ भी लगा जाएं।

कोई आदमी जब किसी शहर में जाकर ठहरता है तो उसे रहने-खाने के लिए भाड़ा चुकाना पड़ता है। पर बस्तर के मध्य (जो कि भारत का एक अत्यंत पिछड़ा हुआ जिला है) प्रत्येक बड़े गाँव में अलग से एक घर होता है, जिसे 'थानागुरी' कहते हैं। थानागुरी का अर्थ है अतिथि-गृह और पुलिस के 'थाने' से इसका कोई संबंध नहीं। आम तौर पर यह एक बड़ी-सी मडैया होती है। गाँव में आने वाला अतिथि जब गाँव के मुखिया के पास जाकर ठरहने की जगह माँगता है, तो उसे थानागुरी में ही ठहराया जाता है।

थानागुरी में हर सुविधा रहती है—पानी का घड़ा, थोड़ा-सा ईधन, एक

झाड़ू और उठने-बैठने के लिए कुछ चटाइयाँ। अतिथियों के लिए गाँव की लड़कियाँ बारी-बारी से थानागुरी को झाड़-बुहारकर हमेशा साफ-स्वच्छ रखती हैं। गाँव के किसी न किसी बुज़ुर्ग को कुएं या नदी से पानी लाने का काम सौंपा जाता है। भारत में यदि कहीं परंपरागत अतिथि-सत्कार मिलता है तो बस देश के इस अत्यंत पिछड़े हुए इलाके में।

अगर शहरी आदमी को कभी जंगल में मिलने वाली चीजों के बल पर

जीवन बिताना पड़े, तो वह एकदम हाथ-पैर छोड़ बैठे। मगर जंगल के वासियों के पास माचिस न भी हो, तो भी वे आग सुलगाने में कोई कठिनाई महसूस नहीं करते। वे आँधी-पानी में भी तेज आग दहका सकते हैं। पेड़-पौधों से वे रस्सी, डोरी या मशाल बना लेते हैं। रहने के लिए आनन-फानन ठौर-ठिकाना तैयार कर लेते हैं। ईंट, सीमेंट, कील-काँटे या दूसरे इमारती सामान के बिना भी झोपड़ी या मड़ैया बना लेते हैं। बड़े ही प्राचीन फंदों में पक्षियों और छोटे-छोटे जीव-जंतुओं को फाँस लेते हैं। मामूली से मामूली बंसी या टोकरी में मछली पकड़ते हैं। भोजन में प्रोटीन और विटामिन प्राप्त करने के लिए वे टिड्डिया, कंद-मूल और ऐसे-ऐसे जंगली फल, डंठल, पत्ते, बेर आदि खाते हैं जिनका तुम्हें ज्ञान तक नहीं होगा।

एक दिन हम शिकार करने गये। रास्ते में मेरे पाँव में मोच आ गई। मेरे साथी आगे निकल गए और मैं शाम तक एक घाटी में बैठा रहा। मेरे आसपास आठ-दस लड़के ढोर-डंगर चरा रहे थे। दिन-भर उनकी गतिविधियों को देखकर मैंने उनसे कई नई बातें सीखीं।

ये लड़के और उनके कुत्ते बड़ी होशियारी से अपने ढोर-डंगरों पर नज़र रखते थे। ज्यों ही कोई जानवर आँख से ओझल होने लगता कि वे दौड़कर जाते और उसे हाँककर ले आते। इसके साथ-साथ वे घर के लिए कंद-मूल, बेर, खाने योग्य पत्ते वगैरह भी एकत्र करते रहे। दो-एक लड़के जंगली फल बीनकर उन्हें दो चपटे पत्थरों के बीच रखकर तोड़ते जा रहे थे। एक लड़के ने अपनी कमीज उतारी और उसकी मदद से उन लोगों ने नदी में मछलियाँ पकड़ीं। एक-दो लड़के मोटी-मोटी जड़ें एकत्र करके लाते रहे। सबसे बड़े दो लड़के गुलेलों से पंडुक और रामचिरैया पर निशाने लगाते रहे। एक छोटे लड़के ने बड़े गर्व के साथ शहद का एक छत्ता लाकर दिखाया जिसे वह एक पेड़ से उतारकर लाया था।

साँझ होते-होते जब ढोर-डंगरों को एकत्र करके घर लौटने की बेला हुई

तो इन लड़कों ने जंगल के उस छोटे-से हिस्से में से खाने-पीने की ढेर सारी चीजे बटोर ली थीं। मान लो, कोई शहरी दिन-भर इसी जगह आकर ठहरता, तो एक तो वह रीते हाथ लौटता, दूसरे अपने पीछे काफी कूड़ाकचरा भी छोड़ गया होता।

अगर कभी परमाणु युद्ध या किसी भंयकर प्राकृतिक विपदा से सभ्यता के सब सुख-साधन नष्ट हो जाएं और हमें लौटकर एक बार फिर प्रकृति की शरण में जाना पड़े, तो मुझे विश्वास है कि जीवन के उस कठिन संघर्ष में ये जंगल-वासी तुमसे या मुझसे कहीं अधिक कुशल और व्यावहारिक सिद्ध होंगे।

बाँस : एक विशाल पौधा

बाँस, घास परिवार का सबसे ऊँचा पौधा है। कुछ प्रकार के बाँस तो 35 मीटर तक ऊँचे जाते हैं और उनके तने का व्यास 35 सेंटीमीटर तक होता है। इनमें से एक प्रकार का बाँस 60 मीटर तक का होता है।

कुछ लोग समझते हैं कि बाँस निपट एशियाई पौधा है, पर वास्तव में यह पश्चिमी गोलार्द्ध में भी पैदा होता है। बाँस संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी भागों से लेकर उत्तरी चिल्ली और अरजेंटाइना में भी पाया जाता है। उत्तर केलिफोर्निया के तटवर्ती क्षेत्रों में ढोर-डंगर का चारा भी है। लेकिन एशिया में बाँस सबसे अधिक पैदा होता है। केवल चीन में ही बाँस की 160 किस्में पाई जाती हैं।

सचमुच, बाँस, बड़े काम की चीज है। न जाने कितने कामों में इसका इस्तेमाल होता है। जानते हो, बाँस में तरल डीज़ल-ईधन को छाना भी जा सकता है। बाँस के कुछ तत्वों से हारमोन और दवाइयाँ बनती हैं। रोगों के रोगाणुओं का अध्ययन करने के लिए बाँस-निर्मित माध्यम इस्तेमाल किया जाता है । ये तो बाँस के कुछ असाधारण उपयोग हैं। साधारण उपयोगों की गिनती कहाँ तक करें।

सच ही कहा गया है कि यदि बाँस न रहे तो सुदूर पूर्व के देशों में लोगों का जीवन ही बदल जाए। एशिया में जहाँ-जहाँ बाँस पैदा होता है वहाँ के लोग

बाँस के अंखुए खाते हैं। पूर्वी भारत में तथा अनेक दूसरे देशों में भी गाँवों में जगह-जगह तुम्हें बाँस की झोंपड़ियाँ या मड़ैया दिखाई पड़ेंगी। असम और बंगाल में इन्हें 'बाशा' कहते हैं। दुनिया-भर में बाँस की बनी मेज-कुर्सियाँ और दूसरी चीजें भी इस्तेमाल होती हैं। चीन, असम और दूसरे देशों में बाँस के बर्तनों में लोग भोजन पकाते भी हैं।

बाँस वाले क्षेत्रों में मछुआरे बाँस की बनी बंसी से मछलियाँ पकड़ते हैं, जिन्हें वे रखते भी बाँस की टोकरियों में हैं। कई पहाड़ी इलाकों में पहाड़ी झरनों का पानी नीचे घाटी के गाँवों तक पहुँचाने के लिए बाँस की पाइपलाइन बिछाई जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि बाँस का इस्तेमाल ईंधन के रूप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त इससे छड़ी-लाठी बनाते हैं, बाड़ लगाते हैं और इसी तरह के कई कामों में इसे इस्तेमाल करते हैं। फिर तुम सब जानते ही हो कि चीन में तो लोग बाँस की तीलियों यानी चापस्टिक से भोजन करते हैं।

यांग्त्से-कियांग जैसी भीषण नदी की तेज धारा में चपटे पेंदे की नौकाएं खेने वाले माँझी बाँस के रस्से इस्तेमाल करते हैं। ये रस्से 1785 किलोग्राम प्रति वर्ग सेंटीमीटर का दबाब बरदाश्त कर लेते हैं, जो कि इस्पात से बने रस्सों की भार संभालने की क्षमता के बराबर है। यही नहीं, कंक्रीट की तह जमाने के लिए भी बाँस एक उत्तम वस्तु है।

कागज बनाने में सदियों से बाँस की लुगदी का इस्तेमाल होता आ रहा है। फिर बाँसा यानी बाँस की नलियों से सिर्फ मामूली बांसुरियाँ ही नहीं, बल्कि बहुत अच्छे वाद्य यंत्र भी बनते हैं। तोकियो में एक आर्गन (बाजा) है, जिसमें बाँस की नलियाँ लगी हैं। मनीला का एक उपनगर है लाख पिनास रिज़ाल। वहाँ डेढ़ सो साल पुराना एक बाजा रखा है। उसमें भी बाँस की नलियाँ लगी हैं।

समस्त वनस्पतियों में बाँस ही एक ऐसा पौधा है जो सबसे तेज गति से बढ़ता है। कहते हैं कि दक्षिण-पूर्व एशिया में बाँस की कुछ ऐसी किस्में पाई

जाती हैं जो एक दिन में लगभग सवामीटर तक बढ़ जाती हैं। बाँस की कुछ किस्में तो दो महीनों में ही पूरी तरह बढ़कर तैयार हो जाती हैं। लेकिन इतने विलक्षण रूप से फूटने के बाद बाँस बाकी सारा जीवन ऊपर की ओर नहीं बढ़ता।

इसके बाद बाँस जमीन के नीचे बढ़ने लगता है। प्रत्येक हैक्टेयर भूमि मे जमीन के नीचे-नीचे 100 से 750 तक नए गुल्म फैल-फैलकर बढ़ते हैं। वसंत ऋतु के आते ही इनका यह फैलाव कुछ समय के लिए रुक जाता है। इसके बाद जमीन में से नए अंखुए निकलने लगते हैं और उगते बाँस की सारी शक्ति नए तनों में लग जाती हैं। एक बार फिर बड़ी विलक्षण गति से ये पौधे ऊपर उठते हैं। बाँस के झुरमुट इसी तरह फैलते और बढ़ते हैं। पुराने जमाने में जमींदार लोग अपनी भूमि की सीमा पर बाँस उगाते थे। बाद में वे सारी भूमि पर अपना अधिकार जताते थे, जहाँ तक बाँस का झुरमुट फैला दिखाई पड़ता था।

बाँस के पौधे की उम्र 100 वर्ष या इससे अधिक भी हो सकती है। पर अचरज की बात तो यह है कि हर साल निकलने वाले अंखुए पिछले साल के अंखुओं से एक साल कम अवधि तक ही जीवित रहते हैं। इसलिए किसी क्षेत्र के बाँस के सब पौधे लगभग एक साथ मरते हैं—क्यों न कुछ पौधों की उम्र सौ साल की हो और कुछ की केवल एक वर्ष की हो।

जब बाँस के नाल फूलते हैं—जो कि शुरू के पौधों की उत्पत्ति के बाद सौ साल तक फूलते रहते हैं—तो एक-दो वर्षों के भीतर बाँस का सारा जंगल भर जाता है। विचित्र बात तो यह है कि एक देश से ले जाकर दूसरे देश में रोपे गए पौधे भी उसी समय फूलते और मरते हैं जिस समय वह मूल जंगल, जहाँ से वे ले जाए जाते हैं।

चहचहाती गौरैया

ज्यो-ज्यों जनसंख्या बढ़ती गई और मनुष्य अधिकाधिक वन्य प्रदेशों पर अधिकार जमाता चला गया, जंगली जीव-जंतुओं ने दो तरह से प्रतिक्रिया प्रकट की। अधिकाँश जीव-जंतु अपने युगों पुराने शत्रु (मनुष्य)से बचने के लिए घने जंगलों में पीछे ही पीछे हटते चले गए। ऐसा व्यवहार करने वाले जीव-जंतुओं को अंग्रेजी में 'टेक्नोफोबिक' कहते है—यानी सभ्यता के विकास से त्रस्त प्राणी। लेकिन कुछ जीव-जंतुओं ने मनुष्य के निकट रहना भी सीख लिया और उसका कई तरह से फायदा भी उठाया। ऐसे जीव-जंतुओं को अंग्रजी में 'टेक्नोफिलिक' कहते हैं—यानी सभ्यता-अनुरागी प्राणी। देहाती इलाकों में गीदड़, खरगोश तथा लोमड़ियाँ तथा शहरी इलाकों में कौवे, कबूतर और चूहे इसके कुछ उदाहरण हें। पर सर्वोत्तम उदाहरण है गौरैया का, जिसे आम लोग चिड़िया कहते हैं।

सभी वनैले जीव-जंतुओं में शायद गौरैया को ही मनुष्य की संगति सबसे अधिक भाती है। जहाँ कहीं कोई नया नगर बसता है या आबादी होने लगती है, गौरैया भी झट वहाँ पहुँच जाती है—यहाँ तक कि वे मनुष्य के घर के भीतर भी घौंसले बना लेती हैं। यही नहीं, जब उन्हें विश्वास हो जाता है कि तुम उन्हें नुक्सान नहीं पहुँचाओगे तो वे आकर तुम्हारे हाथ से चारा-दाना भी स्वीकार करने लगती हैं। इसीलिए पक्षियों में गौरैया ही एक ऐसा पक्षी है जो

सबसे अधिक 'मानवी' कहा जाता है।

शायद पालतू कुकट (यानी मुर्गा-मुर्गी) के अलावा गौरैया ही ऐसा पक्षी है जो इस धरती पर सर्वत्र पाया जाता है। परंतु दोनों में एक अंतर भी है। मनुष्य मुर्गा-मुर्गी को पाल-पोसकर दुनिया के कोने-कोने तक ले गया। पर गौरैया अपने ही प्रयत्नों से दूर-दूर के क्षेत्रों मे पहुँची है। गौरैया अपने ही बलबूते पर उष्णकटिबंध (गर्म) देशों से अफ़्रीका के अनेक भागों में और फिर सारे यूरोप में फैली तथा दक्षिण-पूर्व एशिया को लांघकर सुदूर-पूर्व के देशों तक पहुंची। लेकिन अमेरिका और दोनों ध्रुवों में मनुष्य ही उसे लेकर गया।

1850-60 के मध्य यूरोप से निकलकर जाने वाले कुछ लोग उत्तर अमेरिका की तरफ गए तो अपने साथ वे गोरैया को भी लेते गए, ताकि उन्हें वहां देखकर अपने पुराने यूरोपीय घरों की याद आती रहे। फिर अमेरिकी किसानों ने फसलों को नष्ट करने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए भी गौरैया का आयात किया। 1860-70 के अंतिम वर्षों में आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड ने भी इसी प्रयोजन से गौरैया का आयात किया। दक्षिण अमेरिका में गौरैया 1872 में पहुंची। उस साल कुल बीस जोड़े ब्योनेस आयार्स में छोड़े गए। वहां इनकी संख्या तेजी से बढ़ती चली गई। देखते ही देखते गौरैया दक्षिण अमेरिका के दक्षिणी और मध्य क्षेत्रों में फैल गई।

अधिकाँश पशु-पक्षी हर ऋतु में एक नया साथी ढूँढ़ लेते हैं। लेकिन गौरैया (कबूतरों और भेड़ियों की तरह ही) जीवन-भर के लिए जोड़ा बाँधती हैं। जब इसका जीवन-साथी मर जाता है तो नर या मादा बिल्कुल मनुष्य की तरह ही 'शोकमग्न' हो जाती है।

गौरैया की वंश-वृद्धि बड़ी तेजी से होती है। मादा गौरैया साल में चार बार और हर बार औसत से पाँच अंडे देती है। यदि इन सब अंडों से बच्चे निकल आएं और वे जीवित बच जाएं तो गौरैया की संख्या इतनी जल्दी और इतनी अधिक बढ़ जाए कि वे प्रकृति का सारा संतुलन ही बिगाड़ दें और तबाही-सी मच जाए। गणित लगाकर देखो, तो सारी बात तुम्हारी समझ में

आ जाएगी।

प्रथम वर्ष के अंत में 20 गौरैया के बच्चे (चार बार अंडे देने से और हर बार पाँच बच्चे निकलने से) तथा इनके माता-पिता को मिलाकर कुल संख्या होगी बाईस।

इन 22 गौरैया (11 जोड़े) के बच्चे (11×20) होंगे। तब 22 माता-पिता को शामिल करके दूसरे वर्ष के अंत तक गौरैया को कुल आबादी 242 हो जाएगी।

अगर अगले चार वर्षों के आँकड़ों का हिसाब करें, तो तुम देखोगे कि छह वर्षों के अंत में जाकर (जो कि एक गौरैया के जीवन काल से कम अवधि है) गौरैया की संख्या 35,43,122 तक जा पहुँचेगे।

परंतु प्रकृति प्राणियों को इस तरह कभी बढ़ने नहीं देती। विभिन्न प्राणियों में संतुलन बनाए रखने के लिए प्रकृति के पास शिकार भी हैं और शिकारी भी। गौरैया के भी कई शत्रु हैं, जैसे—बाज़, बिल्ली, चूहा, उल्लू आदि। जो गौरैया को पकड़कर खाते हैं। इसके अतिरिक्त, आँधी-ओलों तथा ठंडे प्रदेशों में बर्फ के कारण भी बड़ी संख्या में गौरैया का विनाश होता है। औसत से गौरैया के आठ बच्चों में से केवल एक ही बच पाता है।

एक बार एक गौरैया की मृत्यु ऐतिहासिक महत्व की हो गई और उसकी खबर ब्रिटेन के अनेक अखबारों में छपी। सन् 1936 की बात है, लंदन में लार्ड्स के क्रिकेट मैदान में कैंब्रिज विश्वविद्यालय के एक गेंदबाज़ की तेज़ गेंद से एक गौरैया मारी गई। इस अद्भुत मौत से वह एक तरह से अमर ही हो गई है।

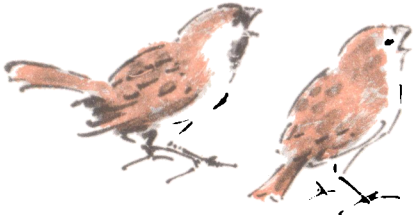

जीव-जंतु पालतू कैसे बने?

मनुष्य ने जितनी उन्नति की है, उतनी उन्नति वह कभी न करता यदि वह जंगली जीव-जंतुओं को पालतू न बनाता। उदाहरण के लिए, यदि उसके पास हल चलाने के लिए गाय-भैंस या घोड़े न होते तो वह किसान कभी न बन पाता। सवारी के लिए घोड़े या गाड़ी-बग्घी खींचने के लिए जानवर न होते तो वह दूर-दूर की यात्रा कभी न कर पाता। ऊँट न होते तो वह रेगिस्तानों में दूरदराज़ तक न जा पाता।

मनुष्य ने सबसे पहले कुत्ते को पालतू बनाया। इसीलिए उचित ही वह मनुष्य का सबसे पुराना मित्र' कहलाता है। कुत्ता बड़ा वफादार, स्नेही और प्यारा जानवर सिद्ध हुआ। अपने स्वामी में जितना विश्वास कुत्ता करता है, उतना शायद कोई और प्राणी नहीं।

कुत्ते को मनुष्य ने पहले-पहल कैसे पालतू बनाया? बहुत प्राचीन काल में मनुष्य एकदम माँसाहारी था और आखेट में जीव-जंतुओं को मारकर उनका माँस से पेट भरता था। उन दिनों जंगली कुत्ते, भेड़िए और गीदड़ 'पाषाण युग' के मानव की गुफाओं के आसपास मंडराते रहते थे और हड्डियाँ, खाल के टुकड़े वगैरह, जो चीज उन्हें मिलती, उससे पेट भरते थे। कभी-कभार मनुष्य इनके नन्हें बच्चों को पकड़कर अपने पास रख लेता था। वे पालतू बन जाते और बच्चे देते। इससे मनुष्य जंगली जानवरों को पकड़कर लाने के

कष्ट से बच गया। कुत्ता बहुत ही वफादार जानवर सिद्ध हुआ। वह मनुष्य के घर की रखवाली करता। कोई जंगली जानवर आता दिखाई पड़ता तो भौंककर मनुष्य को सावधान कर देता। शिकार करने में भी वह मनुष्य का सबसे बड़ा सहायक सिद्ध हुआ, क्योंकि इन दिनों मनुष्य के पास आहार प्राप्त करने का एकमात्र वही साधन था।

इतने लंबे समय तक मनुष्य के पास पालतू बनकर रहने और नियंत्रित वंश-वृद्धि के कारण आज के कुत्ते में और उसके जंगली पुरखों में काफी अंतर है। भेड़िया और गीदड़ हालाँकि कुत्ते की नस्ल के ही हैं, पर वे मनुष्य के साथ हिल-मिलकर नहीं रह सके, इसलिए वे आज भी जंगलों में रहते हैं। भेड़िए और गीदड़ तथा कुत्ते में भीतरी यानी मनोवैज्ञानिक अंतर बहुत अधिक है, हालाँकि कुछ कुत्ते (जैसे अलसेशन) भेड़िए से और दूसरे कुत्ते (जैसे 'पी' कुत्ते) गीदड़ से मिलते-जुलते हैं।

धीरे-धीरे मनुष्य ने खेती-बाड़ी करना सीखा और फसलें उगानी शुरू की। फिर उसने जंगली बैल पाला और उसकी मदद से हल चलाया। बाद में उसने बैल से गाड़ी भी खिंचवाई। उसी से वह माँस भी प्राप्त करता (स्पष्टतया दुधारू गाय का महत्व उसने बहुत बाद में जाकर पहचाना)। पहाड़ी इलाकों में मनुष्य ने बकरियाँ और रेगिस्तान में ऊँट पाले।

बिल्ली को मनुष्य ने तब पालतू बनाया जब उसने उन्नति की अगली सीढ़ी पर कदम रखा और अनाज को संजोकर रखना सीख लिया। संभवतः बिल्ली को पहले-पहल स्त्रियों ने ही (पुरुषों ने नहीं) पाला। ऐसा विश्वास है कि सबसे पहला किसान एक स्त्री ही थी। वह अपने घर के निकट ही हल चलाती; मनुष्य जंगल में अ[illegible] करने जाता। कल्पना की जा सकती है कि

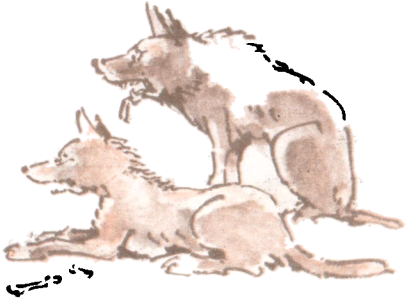

बिल्लियाँ अनाज के सुरक्षित भंडार में चूहों को पकड़ने भागती रहती होंगी। शायद मनुष्य ने बिल्ली के कुछ बच्चों या गर्भवती (बच्चे देने वाली) बिल्लियों को पकड़ा होगा, उन्हें पाला-पोसा होगा, खिलाया-पिलाया होगा और इस तरह मनुष्य की कैद में बिल्लियों की संख्या बढ़ती चली गई होगी। मनुष्य ने देखा होगा कि चूहों की संख्या घटाने के लिए बिल्लियाँ बड़ी उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। बिल्ली ने भी देखा होगा कि जंगलों में भटकने और जिंदा रहने के लिए शिकार के पीछे मारे-मारे फिरने से मनुष्य की सुखद गुफाओं में रहना कहीं अधिक सुविधाजनक है, जहाँ नियमित रूप से भोजन मिल जाता है। प्राचीन मिस्र में अनाज की खूब पैदावार होती थी। वहाँ के निवासियों की बिल्लियों में बड़ी श्रद्धा थी। मिस्र की प्राचीन कब्रों में हजारों बिल्लियों की 'ममी' यानी उनके परिरक्षित शव मिले हैं।

जंगली गधा घोड़े से पहले पालतू बना। इसका स्पष्ट कारण यह है कि घोड़े को पकड़ना बहुत कठिन था। पर घोड़े को पालतू बना लेने के बाद भी मनुष्य ने यह देखा कि गधा तो घोड़े से भी तगड़ा है और ऐसे चरागाहों में भी जिंदा रह सकता है जहाँ अधिक घास नहीं होती। इसलिए गधा भूमध्यसागर के क्षेत्रों में और पश्चिम एशिया और राजस्थान के रेगिस्तान इलाकों में अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ।

घोड़ा शायद सबसे बाद में जाकर पालतू बना। पर एक बार वह पालतू बन गया तो वह बड़ा फुर्तीला, विश्वसनीय और स्नेही मित्र सिद्ध हुआ। मगर शीतकटिबंध (अत्यधिक ठंड वाले इलाकों) में घोड़ा इतना उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ। इसलिए बर्फ से ढके उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुव में स्लेज गाड़ी खींचने के लिए उसमें कुत्ते जोते जाते हैं।

जो पक्षी सबसे पहले पालतू बनाए गए, उनमें प्रमुख मुर्गा-मुर्गी और कबूतर थे। इनके वंशज आज भी भारत में पाए जाते हैं। लाल जंगली मुर्गा,

जो भारत के कितने ही जंगलों में पाया जाता है, मुर्गे-मुर्गियों की विभिन्न नस्लों का पूर्वज है। मनुष्य ने इसे पालतू बनाकर कई प्रकार की बाढ़िया नस्लें भी तैयार करवाई। फिर मनुष्य इसे पृथ्वी के कोने-कोने में अपने साथ ले गया। कुत्ते के बाद मुर्गा-मुर्गी ही ऐसा पालतू प्राणी है जो सारी दुनिया में पाया जाता है।

कबूतरों की विभिन्न नस्लों का पूर्वज है नील कपोत (जंगली कबूतर)। यह भी लगभग सारे भारत में पाया जाता है। पाँच हजार साल पहले भी मिस्र के लोग भोजन के लिये और शायद संदेश भिजवाने के लिए भी कबूतर पालते थे। चीनी लोग भी सदियों से कबूतर पालते आ रहे हैं। कहते हैं कि अकबर ने 20,000 कबूतर पाल रखे थे।

17

पालतू बने बनैले प्राणी

हम सब बड़े शौक से जीव-जंतुओं को पालते हैं। यह है भी स्वाभाविक। पशु-पक्षियों के प्रति प्रेम की भावना हमें अपने जंगली पूर्वजों से विरासत में मिली है।

आम तौर पर हम सामान्य किस्म के पशु-पक्षी पालकर ही संतोष कर लेते हैं—जैसे कुत्ता, बिल्ली, खरगोश, बंदर, तोता, मैना, कबूतर आदि। कुछ लोग तनिक असामान्य किस्म के प्राणी पालते हैं—जैसे हिरण और मोर। कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्हें मौका मिले तो वे तेंदुए, बाघ, भालू या भेड़िए के बच्चे भी पालना चाहेंगे। लेकिन उचित यही है कि सामान्य जीव-जंतुओं को ही पालतू बनाकर रखा जाए।

हर कोई हाथी का बच्चा नहीं पाल सकता। एक बार प्रिटोरियस नामक लेखक के गले अफ्रीका के जंगली हाथी का बच्चा पड़ गया। पहले तो वह बड़ी मुश्किल से यह जान पाया कि हाथी की असली खुराक क्या है। हाथी के बच्चे को आसानी से दस्त लग जाते हैं और वह बहुत जल्दी मर भी जाता है। हथिनी का दूध पतला और पनीला सा लगता है, पर होता वह बड़ा गुणकारी है। गाय के दूध के मुकाबले हथिनी के दूध में दुगनी मात्रा एल्ब्यूमन (प्रोटीन) की होती है। प्रिटोरियस काफी जाँच-परख के बाद कहीं यह समझ पाया कि अफ्रीकी हाथी के बच्चे के लिए संतुलित आहार यह है—साढ़े चार

लिटर गाय का दूध; 0.28 लिटर क्रीम; दो दर्जन अंडों की सफेदी और 1.80 किलोग्राम उबला चावल।

असल में जंगली जीव-जंतुओं के बच्चों के पालन-पोषण का काम विशेषज्ञों के ही वश की बात है। पालतू बनाए जाने वाले वनैले प्राणियों के साथ एक और कठिनाई है। ज्यों—ज्यों वे बड़े होते जाते हैं, उनका स्वभाव इतना उग्र होता जाता है कि उन्हें मनुष्य के लिए अपने परिवार में रखना दुश्वार हो जाता है। पर तब तक वे मनुष्य से इतने हिल-मिल चुके होते हैं कि यदि उन्हें जंगल में जाकर छोड़ दिया जाए तो वहाँ वे प्राकृतिक जीवन जी ही नहीं सकते।

अब खुराक को ही लो। कसाई से प्राप्त माँस पर पलने वाले बाघ और तेंदुए की आँतों में कीड़े पड़ जाते हैं। अक्सर इसी से उनकी मृत्यु भी हो जाती है। वजह यह है कि जंगल के जानवरों को मारकर जब ये खाते हैं तो उनके माँस के साथ उन जानवरों की खाल के टुकड़े और रेशे-तंतु भी उनके पेट में जाते हैं। लेकिन ये चीजें उस माँस में नहीं होतीं जो कसाई से मंगवाकर उन्हें खिलाया जाता है। जंगल में मैंने बाघों और तेंदुओं के मल का निरीक्षण करके पाया है कि उसमें खाल के टुकड़े भी होते हैं। फिर दूसरी बात यह है कि कसाई के माँस में वे लवण-तत्व भी नहीं होते जो बाघ-तेंदुए जंगल में जानवरों का ताजा खून पीकर प्राप्त करते हैं।

मनुष्य की कैद में पड़े जंगली जीव-जंतु अक्सर दूसरे गौण लेकिन आवश्यक तत्वों से भी वंचित रह जाते हैं। तुमने देखा होगा कि तुम्हारा कुत्ता कभी-कभी घास भी खाता है, विशेषकर तब जब उसे अपच होती है। मध्य प्रदेश के गोंडों ने मुझे बताया है कि उन्होंने अपनी आँखों से बाघों को एक खास किस्म की घास खाते हुए देखा। बाघ भी अपच दूर करने के लिए घास खाते हैं। शायद वे मोटा चारा या अपने शरीर के लिए आवश्यक विटामिन वगैरह प्राप्त करने के लिए ही ऐसा करते हैं। इसी प्रकार अनेक जंगली जीव-जंतु लवण-लेह से यानी नमक चाटने से स्वास्थ्यकार खनिज प्राप्त

करते हैं!

जो हो, सभी जंगली जानवरों को घूमने-फिरने की आजादी होती है। वे प्रकृति के नियम के अनुसार अपने भोजन के लिए अतिरिक्त या विविध पदार्थ भी जुटा लेते हैं। व्यायाम और शिकार करके वे चुस्त, चौकस और स्वथ्य रहते हैं। लेकिन जब उन्हें पिंजरे में बंद कर दिया जाता है या जंजीर से बाँध दिया जाता है तो ये जंगली जीव-जंतु अपने प्राकृतिक अधिकारों को खो बैठते हैं। यही कारण है कि वे ऐसी हालत में बीमार और सुस्त और उदास लगते हैं। बंदी अवस्था में कोई जंगली प्राणी कैसा महसूस करता है, इसे समझने के लिए यदि तुम अपने आपको उनकी जगह रखो तो सारी बात सरल ही तुम्हारी समझ में आ जाएगी।। कल्पना करो कि कोई जंगली जानवर तुम्हें पकड़कर अपने पास कैद कर लेते हैं—मनुष्यों से एकदम दूर—और तुम्हें वही सब खाना-पीना पड़ता है जो वे तुम्हें देते हैं, ऐसी हालत में तुम्हें कैसा लगेगा?

अब मैं तुम्हें कुछ ऐसे पालतू जानवरों के उदाहरण दूँगा, जो कभी-कभी

हिंसा पर भी उतर आते हैं। मेरे एक अंकिल ने बाघ और तेंदुए के बच्चों को पालने के लिए कई बार कोशिश की, लेकिन जब बाघ के बच्चे लगभग एक साल के और तेंदुए के बच्चे लगभग नौ महीने के हो गए, तो वे संभाले नहीं संभलते थे। लाचार होकर वह उन्हें चिड़ियाघर में छोड़ आए। इस उम्र तक आते-आते बाघ और तेंदुए के बच्चे इतना उपद्रव करने लगते थे कि मनुष्य के, और विशेषकर बच्चों के, काबू ही नहीं आते थे।

जंगल के सभी जानवरों की तरह जंगली हिरण भी मनुष्य से न केवल डरता है, बल्कि उससे घृणा भी करता है। जब हम उन्हें पालतू बनाकर रखते हैं तो उनके दिल से प्राकृतिक डर तो चला जाता है, लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि उनके भीतर की प्राकृतिक घृणा कभी अचानक फूट पड़े और निकट खड़े वे किसी भी मनुष्य पर हमला कर बैठें।

असम में मेरे एक चचेरे भाई रहते हैं। उनके पास 'मोहन' नामक एक मादा (हिरण) था। तीन साल तक तो मोहन का व्यवहार बड़ा अच्छा रहा, लेकिन उसके बाद एक दिन अचानक वह माली को देखकर भड़का। सींगों तथा खुरों से मार-मारकर उसने माली को घायल कर दिया। दो-तीन आदमी दौड़कर यदि माली को बचा न लेते तो निश्चय ही वह जान से हाथ धो बैठता।

स्पष्ट है कि मनुष्य के पास असामान्य प्राणी नहीं, बल्कि वही प्राणी खुशी से रहते हैं जिनको सदियों से पालतू बनाया जा चुका है। ऐसे प्राणियों पर सहज भरोसा भी किया जा सकता है।

लेकिन यह समझने की भूल कभी न करना कि एक ही नस्ल के भिन्न-भिन्न जंतुओं का व्यवहार एक जैसा होता है। कोई दो बिल्लियाँ या दो मुर्गियाँ या दो कुत्ते बिल्कुल एक जैसे नहीं होते। एक झेंपू तो दूसरा निर्भीक, एक उपद्रवी तो दूसरा शांत-गंभीर, एक लोभी तो दूसरा आत्मसंयमी भी हो सकता है। इस तरह गौर से देखो तो पाओगे कि जीव-जंतु भी मनुष्य से अधिक भिन्न नहीं होते।

मुद्रक: जूपीटर ऑफसेट वर्क्स, शाहदरा, दिल्ली-110 032

रु. 14.00

ISBN 81-237-2003-3

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया